अगस्त १९९१ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

धम्मवाणी

सब्ब पापस्स अकरणं, कुसलस्स उपसम्पदा।
सचित्त परियोदपनं, एतं बुद्धान सासनं॥

सभी पापकर्मों से बचें, कुशल कर्म करें, अपने चित्त को पूर्णरूप से निर्मल करें, सभी बुद्धों की यही शिक्षा है।

उत्कृष्ट मंगल धर्म

अहिंसा, संयम और तप

भगवान महावीर की जन्म जयन्ती मनाने के लिए एकत्र हुए – सज्जनो, सन्नारियो! किसी महापुरुष की जन्म-जयन्ती कैसे मनाई जाए? उस महापुरुष की जय-जयकार करके, उस महापुरुष का गुणगान गा करके अगर हम समझें कि हमने जयन्ती मना ली तो गलत बात हुई। किसी महापुरुष की जयन्ती तभी सही माने में मनाई जाती है जबकि उसकी शिक्षा को केवल याद ही नहीं करें, उसे अपने जीवन में उतारें। आज के दिन इस बात का संकल्प करें कि हम कैसे उनकी शिक्षा को अपने जीवन में उतारने के लिए कटिबद्ध हो जाएंगे? क्या शिक्षा है भगवान् महावीर की? भगवान् महावीर ने मानव समाज को धर्म सिखाया। एक बात बहुत अच्छी तरह समझ लेनी चाहिये कि भगवान् महावीर ने जैन धर्म नहीं सिखाया, बिल्कुल नहीं सिखाया। जैसे भगवान बुद्ध ने बौद्ध धर्म नहीं सिखाया, जैसे भगवान कृष्ण ने हिन्दू धर्म बिल्कुल नहीं सिखाया, धर्म सिखाया। धर्म सार्वजनीन होता है, सार्वदेशिक होता है, सार्वकालिक होता है। जो धारण करे उन सभी लोगों का, सभी समय, एक समान कल्याण करनेवाला होता है तो धर्म होता है. धर्म असीम होता है, उसे ससीम नहीं बना दें।

जैन धर्म केवल जैनियों का होकर रह जाएगा, बौद्ध धर्म केवल बौद्धों का होकर रह जाएगा, हिन्दू धर्म केवल हिन्दुओं का होकर रह जाएगा। परन्तु धर्म सबका होता है। महापुरुष धर्म सिखाते हैं। कोई सम्प्रदाय स्थापित नहीं करते। क्या धर्म सिखाया भगवान महावीर ने? धर्म जो बड़ा उत्कृष्ट होता है। बड़ा मंगलकारी होता है। कब होता है? जबकि उसे धारण करते हैं तब होता है। केवल धर्म की चर्चा करके रह जाएं, धर्म की बातें सुन कर रह जाएं तो धर्म के नाम पर बुद्धि-विलास हुआ, धर्म के नाम पर वाणी-विलास हुआ। धारण करके तो नहीं देखा न! और धारण नहीं किया तो उसका जो मंगलकारी परिणाम आने वाला है, वह नहीं आया। उसकी उत्कृष्टता से हमें कोई लाभ नहीं मिला।

क्या है धर्म? उत्कृष्ट मंगल वाला यह धर्म क्या है? 'अहिंसा संजमो तवो।' मुख्य तो अहिंसा है। यह ध्येय है। पर इस ध्येय को प्राप्त करने के लिए साधन क्या है? संजमो और तवो – ये दो साधन हैं, संयम और तप, जिनकी वजह से सही माने में कोई व्यक्ति अहिंसक बन सकता है।

अहिंसा क्या होती है, इसे भी समझ लेना चाहिये। किसी प्राणी की हत्या न करें, यह अहिंसा है। लेकिन यह तो अहिंसा का एकांगी पक्ष है, सर्वांगीण अहिंसा नहीं हुई। सर्वांगीण अहिंसा जो कि कोई महापुरुष सिखाता है, वह तब सम्पन्न होती है जबकि हमारे शरीर के कर्मों में अहिंसा समा जाए। हमारे वाणी के कर्मों में अहिंसा समा जाए। हमारे मन के कर्मों में अहिंसा समा जाए। तब समझना चाहिए कि हम अहिंसक हुए। कैसे समा जाए? किसी प्राणी की हत्या करने से आदमी बच सकता है लेकिन और जो अन्य प्रकार की हिंसाएं करता है, शरीर से, वाणी से, मन से, उनसे बचने के लिए बड़े संयम की जरूरत होती है। हम शरीर से, वाणी से कोई ऐसा काम नहीं करें जिससे अन्य प्राणियों को पीड़ा पहुँचे, अन्य प्राणियों की सुख-शांति भंग हो। अगर हमारे शारीरिक कर्मों से, वाचिक कर्मों से, अन्य प्राणियों की सुख-शांति भंग होती है, उन्हें पीड़ा पहुँचती है तो भाई हिंसा ही है न! हम वस्तुतः प्राणियों कि हत्या न करके अपने आपको अहिंसक माने पर सही माने में अहिंसक नहीं हुए। मैं वाणी से झूठ बोलकर किसी को ठगता हूं – हिंसा ही है। मैं वाणी से कड़वी बात बोलकर किसी का जी दुखाता हूं – हिंसा ही है। मैं वाणी से चुगली की बात, पर-निंदा कि बात, निकम्मी बात कहकर किसी की हानि करता हूं, किसी का जी दुखाता हूं – हिंसा ही है। ऐसे ही शरीर से जो वस्तु मेरी नहीं है, किसी अन्य की है, उसे चुरा लेता हूं, उसे छीन लेता हूं, उसे अपना लेता हूं – हिंसा ही है। शरीर से व्यभिचार करता हूं – हिंसा ही है। व्यवसायी हैं, व्यापार करते हैं, व्यापार में अहिंसा आई कि नहीं? अपने ग्राहक को ठगता हूं हिंसा ही हिंसा है। वह ग्राहक जो हमारा अन्नदाता है, जिसका दिया हुआ अन्न हम खाते हैं, उसको ठग रहे हैं, क्वालिटी खराब दे रहे हैं, क्वांटिटी [मात्रा] कम दे रहे हैं, मिलावट का माल दे रहे हैं और समझे जा रहे हैं कि हम तो बड़े अहिंसक हैं क्योंकि हमने तो किसी की हत्या नहीं की न! अरे तो सर्वांगीण अहिंसा समझ में ही नही आई, उसे धारण करना ही नहीं सीखा, तो कैसे अहिंसक हुए? शरीर और वाणी के वे सारे काम, जो अन्य प्राणियों को हानि पहुँचाते हैं, अन्य प्राणियों की सुख-शांति भंग करते हैं हिंसा ही हिंसा है। कैसे बचें? तो बचने का रास्ता बतलाया-संयम'।

जी करता है कि किसी अन्य की वस्तु चुरा लूं, नहीं चुराता, अपने मन को रोकता हूं, संयम करता हूं। जी करता है कि ग्राहक को ठग करके धन कमा लूं, नहीं ठगता, संयम करता हूं। जी करता है कि इस समय मार्केट में किसी उपभोक्ता वस्तु (Consumer item) की कमी है, उसे इकट्ठा कर लूं, परिग्रह कर लूं, उसका संचय कर लूं, उसको संग्रह कर लूं ताकि लोगों को ऊंचे दामों में मेरे पास माल खरीदना पड़े, बहुत धन प्राप्त हो जाए। ऐसा जी चाहता है, पर नहीं करता, संयम करता हूं। मेरे किसी भी काम से अन्य प्राणियों

की सुख-शान्ति भंग न हो जाए। मेरे किसी भी काम से अन्य प्राणियों को कष्ट न पहुँचे, पीड़ा न पहुँचे, तो सही माने में अहिंसक हुआ, अन्यथा अहिंसक नहीं हुआ।

किसी ऐसे घर में जन्मा कि जहां बचपन से ही देखता हूं सब लोग शाकाहारी हैं और इसलिए मैं भी शाकाहारी हो गया। इस परिवेश में पला जहां सब लोग शाकाहारी हैं, मैं भी शाकाहारी हो गया। जहां लोग कन्दमूल भी नहीं खाते, मैं भी कन्दमूल नही खाता, अरे तो क्या संयम कर लिया भाई? क्या संयम कर लिया तुमने? ऐसी परिस्थिति में जन्मे, पले और इस तरह का भोजन लेते हो तो कैसे मानो अपने आप को कि हम अहिंसक हो गये। अपने मन पर संयम करना सीखा कि नहीं? अहिंसा का सारा क्षेत्र समझ में आ जाएगा जबकि शरीर और वाणी के सारे दुष्कर्मों से हम कैसे बचें, यह समझ में आ जाएगा और बचने लगेंगे। संयम किए बिना नहीं बच सकते।

संयम द्वारा हमने मन को जबरदस्ती दबाया, मन में लोभ तो जागा, हमने दबा लिया, मन में वासना जागी हमने दबाली, मन में क्रोध जागा हमने दबा लिया तो पूरी अहिंसा नहीं हुई अभी। दमन करने से अहिंसा नहीं होती। विकारों का शमन करना आ जाए तब अहिंसा पूरी हुई। तो इसीलिए तप।

अतः संयम के बाद अगला कदम तप का। यह बाहर-बाहर का तप नहीं, अन्तर्तप। मानस की गहराइयों में जाकर देखें कि विकार कहां जागता है? शरीर और वाणी सें हिंसा करने की प्रेरणा हमें कहां मिलती है? कहां बंधन बँधने शुरू हुए? कहां आस्त्रव का बहाव शुरू हुआ? जहां गाठें बँधनी शुरू हुई, वहां रोक लगानी आई कि नहीं? वहां संवर करना आया कि नहीं? इसी को उस महापुरुष ने कहा –**आयतचक्खु लोक विपस्सी**' –अरे जो विपश्यना करता है, माने अपने भीतर सच्चाइयों को देखता है कि कहां विकार जागने लगा और वहां पर उसको रोक लगाता है, संवर करता है, तो चक्षु प्राप्त हो जाते हैं उसे। काहे के चक्षु प्राप्त हो जाते हैं? ज्ञान के चक्षु प्राप्त हो जाते हैं, प्रज्ञा के चक्षु प्राप्त हो जाते हैं, धर्म के चक्षु प्राप्त हो जाते हैं। तब समझ लेता है कि धर्म क्या होता है? अब तक तो सम्प्रदाय को ही धर्म मानकर चल रहा था। जैसे ही कोई धर्म की चर्चा हो तो कहेंगे कौनसा धर्म? हिन्दू धर्म, कि जैन धर्म, कि बौद्ध धर्म, कि इसाई धर्म कि मुस्लिम धर्म। अरे भाई धर्म कभी हिन्दू होता ही नहीं, मुस्लिम होता ही नहीं, जैन होता ही नहीं, बौद्ध होता ही नहीं। धर्म-धर्म होता है जो सब पर लागू होता है।

कुदरत के कानून को धर्म कहते हैं। विश्व के विधान को धर्म कहते हैं। भारत की पुरानी भाषा में गुण-धर्म-स्वभाव को धर्म कहते थे। जैसे कि आग का धर्म है जलना और जलाना। ठीक इसी प्रकार धर्म समझ में आने लगेगा। जैसे ही मन में क्रोध जागा तो देखेंगे कि क्रोध का क्या धर्म है? क्रोध का धर्म है जलना और जलाना। वासना जागी, कि भय जागा, कि ईष्या जागी, कि अहंकार जागा, जो विकार मन में जागा व्याकुल बना देगा, बेचैन बना देगा। यह उसका धर्म है, स्वभाव है। हिन्दू हो तो उसे व्याकुल बना देगा, जैन हो तो उसे व्याकुल बना देगा, बौद्ध हो, कि ईसाई हो, कि मुसलमान हो, जो अपने भीतर विकार जगाएगा, अशान्त हो ही जाएगा, व्याकुल हो ही जाएगा। और विकार जगाकर जब मैं अपने भीतर अशान्ति पैदा करता हूं, बेचैनी पैदा करता हूं, दुःख पैदा करता हूं, तो अपनी यह अशान्ति, अपना यह दुःख, अपने तक सीमित नहीं रखता। उसे बांटने लगता हूं लोगों को। उस समय जो मेरे सम्पर्क में आएगा, उसी को व्याकुल बना दूंगा। क्रोध जागा, व्याकुल हुआ, तो आस-पास के सारे लोगों को व्याकुल बना दूंगा –यह धर्म समझ में आने लगेगा। और जैसे ही क्रोध दूर हुआ, वासना दूर हुई, भय दूर हुआ, ईष्या दूर हुई, विकार दूर हुए, देखेगा कि तनी शान्ति आने लगी, भीतर कितना सुख मालूम होने लगा। मन निर्मल हुआ कि अनन्त मैत्री से भर जाएगा, अनन्त करुणा से भर जाएगा, अनन्त मुदिता से, अनन्त उपेक्षा-भाव से, सहज भाव से भर जाएगा। शुद्ध-चित्त का यह स्वभाव होता है, यह धर्म होता है, अपनी अनुभूतियों से देखने लगेगा और यूं अनुभूतियों से देख-देख करके अन्तर्मन की गहराइयों में जहां संवर करने लगा तो देखेगा के उस संवर की वजह से अब नए विकार जगाता नहीं और पुराने उभर-उभर कर आते हैं उनकी उदीरणा होती है, उनकी निर्जरा हो जाती है, उनका क्षय हो जाता है। यूं एक पर एक विकार उभरते जाएंगे, नष्ट होते जाएंगे, उभरते जाएंगे, नष्ट होते जाएंगे। एक समय ऐसा आएगा कि चित्त नितान्त निर्मल हो जाएगा, नई गांठ बांधेगा नहीं, पुरानी गांठे सारी खुल जाएंगी। चित्त नितान्त निर्ग्रन्थ हो जाएगा तो शरीर और चित्त के अनित्य, नश्वर, परिवर्तनशील क्षेत्र के प्रति सारा तादात्म्य भाव तोड़कर, आसक्तियां तोड़कर नित्य शाश्वत ध्रुवता का साक्षात्कार कर लेगा। तो सही माने में अहिंसक हो जाएगा।

चित्त हमारा विकारों से मुक्त हो जाए तो असम्भव है कि हम किसी की हत्या कर सकें, असम्भव है कि हम चोरी कर सकें, असम्भव है कि हम व्यभिचार कर सकें, असम्भव है कि हम वाणी या शरीर का कोई ऐसा काम कर सकें जिससे अन्य प्राणियों की हानि हो। जब-जब व्यक्ति अपने शरीर या वाणी से कोई ऐसा काम करता है जिससे अन्य प्राणियों की हानि होती है, वह ऐसा तब तक नहीं कर पाएगा जब तक कि अपने मन में कोई विकार न जगा ले। पहले मन में विकार जागेंगे तब वाणी से कोई ऐसा कर्म करेगा, शरीर से कोई ऐसा कर्म करेगा जो अन्य प्राणियों की सुख-शान्ति भंग करेगा। तो जब तक विकारों से छुटकारा नहीं मिला, मन में विकार पर विकार जागे जा रहे हैं, तब तक हम केवल उनका दमन कर रहे हैं। तो भगवान महावीर की शिक्षा पूरी तरह से समझ में नहीं आई, उसको धारण करना तो बहुत दूर रहा। जिस व्यक्ति ने अन्तर्तप करके विकारों की जड़ें निकालनी सिखाई वह काम हम करें नहीं, तो भगवान् महावीर की शिक्षा पूरी तरह से जीवन में उतार नहीं पाए। भारत की यह बहुत पुरातन विद्या कि अपने भीतर सच्चाई को देखो।

संधिं विदित्ता । सन्धि कहां होती है? चित्तधारा पर राग की सन्धि कहां होती है? चित्तधारा पर द्वेष की सन्धि कहां होती है? जहां सन्धि होती है वहां संवर करो, वहां रोक लगाओ। वह विकार

अगर वहां नहीं रुका तो बढ़ते-बढ़ते सिर पर सवार हो जाएगा। इसके बाद उसे दबाना चाहे तो भले दबा दें, परंतु उससे छुटकारा नहीं हुआ। विकारोंसे हमारी मुक्ति नहीं हुई। विकारोंसे मुक्ति नहीं हुई तो हम सही माने में अहिंसक नहीं हुए। भगवान् महावीर की एक वाणी खूब अच्छी तरह समझनी चाहिये। वह कहते हैं मैं अनारम्भी उसी को कहता हूं जो सचमुच अनारम्भी है। क्या कहगये? भारत की पुरानी भाषा में और आज की भाषा में अनारम्भी अहिंसक को कहा जाता है। आरम्भी हिंसक को कहा जाता है। तो मैं अनारम्भी, अहिंसक उसी को कहता हूं जो आरम्भ ही नहीं करता।क्या आरम्भ नहीं करता? चित्तधारा पर विकार का आरम्भ ही नहीं होने देता। राग जगने ही नहीं देता। द्वेष जगने ही नहीं देता। कोई विकार जगने नहीं देता। ऐसा निर्मल-चित्त हो गया तो अहिंसक हो गया। तो सही माने में अनारम्भी हो गया।

आज के दिन भगवान् का यह उपदेश हमें प्रेरणा दे और आज की यह सभा केवल बुद्धि-विलास और वाणी-विलास के लिए संगठित होकर न रह जाए। केवल कोई कर्मकाण्ड बनकर न रह जाए। हर व्यक्ति इस बात का संकल्प करे कि मुझे अपने अन्तर्मन की गहराइयों में पहुँच कर विकारों से छुटकारा पाना है। विकारों से छुटकारा पाने के लिए मैं किसी दूसरे पर अहसान नहीं कर रहा। मैं हिंसा नहीं करता, चोरी नहीं करता, व्यभिचार नहीं करता, परिग्रह नहीं करता, तो किसी पर अहसान नहीं कर रहा हूं। अपने आप पर अहसान कर रहा हूं, क्योंकि जब-जब ऐसा कोई दुष्कर्म करता हूं तो अपने आपको व्याकुल बना लेता हूं। कुदरत का कानून है। अशान्त हो जाता हूं, दुखियारा हो जाता हूं। अपने दुःखों से मुक्ति पाने के लिए, अपने विकारों से मुक्ति पाना जरूरी है। अहिंसक बनना जरूरी है। अपने अन्तर्मन की गहराईयों में सब अहिंसक बनें। आज की इस सभा का यही उद्देश्य हो। जो-जो लोग आए हैं वे यह प्रण लेकर जाएं कि हमें अपनी जड़ों में समाए हुए विकारों से छुटकारा पाना है और उसके लिए हमें काम में लग जाना है। बिना काम किए होता नहीं। अन्तर्तप करना पड़ेगा। कैसे गहराइयों तक जाकर विकारोंसे छुटकारा पा सकें।आज की सभा में जो-जो आये हैं वे अपने-अपने विकारों से छुटकारा पाएं! अपने दुःखों से छुटकारा पाएं! अपना भला कर लें! औरों का भला कर लें! अपनी स्वस्ति-मुक्ति, औरों की स्वस्ति-मुक्ति, सबकी स्वस्ति-मुक्ति!!

स. ना. गो.